प्रवचन-६२, गाथा-६०, बुधवार, आषाढ़ शुक्ल ७, दिनांक ३०-०६-१९७१

नियमसार शास्त्र। मोक्ष का मार्ग, उसका अधिकार। यह व्यवहारचारित्र का अधिकार चलता है। ६०वीं गाथा। पाँचवाँ महाव्रत किसे होता है और क्यों होता है ? यह बात चलती है। अन्वयार्थ लिया है न थोड़ा ?

**निरपेक्ष भावनापूर्वक; अर्थात्, जिस भावना में पर की अपेक्षा नहीं है – ऐसी शुद्ध निरालम्बन भावनासहित,...** अर्थात् क्या कहा ? भावनासहित। आत्मा शुद्ध आनन्द निर्विकल्प पूर्णानन्दस्वरूप आत्मा का है, उसका अवलम्बन लेकर अन्दर जो एकाग्रता प्रगट हुई है, उसे यहाँ निरालम्बन भावना कहने में आता है। अर्थात् आत्मा शुद्ध चैतन्यघन वस्तु है। आनन्द का नाथ है। इसका आश्रय लेकर वीतरागी शुद्ध परिणति / पर्याय प्रगट हो, उसे इस पंच महाव्रत का विकल्प है, इसकी भी उसे अपेक्षा नहीं है। ऐसी शुद्धपरिणति जहाँ होती है। समझ में आया ? निरपेक्ष। कल बहुत बात हुई थी।

आत्मा वस्तु है, प्रभु ! सर्वज्ञ शक्तिवाला और अतीन्द्रिय आनन्दवाला वह तत्त्व है, क्योंकि सर्वज्ञ और अतीन्द्रिय आनन्द जो परमेश्वर को प्रगट हुआ, वह कहाँ से आया ? वह अन्तर में है। वस्तु के अन्तरस्वरूप में शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञान और शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द, उसकी एकाग्रता। उसमें जिसने स्व-सन्मुख होकर ध्रुवस्वभाव भगवान आत्मा की एकाग्रता में जो भावना हुई, उसे यहाँ निरपेक्ष भावना कहा जाता है।

ऐसी अन्तर की निरलम्बन वीतरागी अवस्था की भूमिका में **सर्व परिग्रहों का त्याग;...** एक वस्त्र का धागा भी जिसे न हो, तो दूसरा परिग्रह तो उसे होगा नहीं। ऐसा **सर्व परिग्रहों का त्याग; अर्थात्, सर्व परिग्रहत्याग सम्बन्धी शुभभाव,...** शुभभाव विकल्प है कि सर्व परिग्रह छोड़ूँ। ऐसे सर्व परिग्रह के त्यागस्वरूप **उस चारित्रभर वहन करनेवाले को...** निश्चय और व्यवहारचारित्र है। नीचे अर्थ है। **चारित्र का भार; चारित्रसमूह; चारित्र की अतिशयता।** अर्थात् ? स्वरूप आनन्द की रमणता का चारित्र, वह निश्चयचारित्र और व्यवहार में पंच महाव्रत का विकल्प, उसके सहचर-साथ में होता है; इसलिए उसे व्यवहारचारित्र कहने में आता है। ऐसा निश्चय और व्यवहार, चारित्र की अतिशयता को

वहन करनेवाला, चारित्र का भार अर्थात् शुद्धता, वीतरागी शुद्धता और पंच महाव्रत के विकल्प का सहकारीपना, दोनों को चारित्रभार कहने में आता है।

**मुमुक्षु :** दोनों की सुन्दरता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** व्यवहार से है न दोनों की सुन्दरता। निश्चय से तो आत्मा के अवलम्बन से वीतरागी आनन्दसहित जो चारित्र अर्थात् आनन्द में रमना, ऐसी दशा प्रगट हुई, वह निश्चयचारित्र है। वीतरागमार्ग में यह है। इसके साथ विकल्प होता है। ये नग्नमुनि होते हैं, सच्चे सन्त होते हैं, वे तो बाह्य में नग्न होते हैं। अन्तर में उन्हें पंच महाव्रत का शुभराग, राग। है आस्रव परन्तु ऐसा भाव अन्तर शुद्धता छठवें गुणस्थान के योग्य मुनि को आनन्द की दशा प्रगट हुई है। अतीन्द्रिय आनन्द—प्रचुर स्वसंवेदन आनन्द की दशा, वह सच्चा चारित्र है और यह पंच महाव्रत का विकल्प, वह व्यवहारचारित्र / आरोपित चारित्र है। वह वास्तविक चारित्र नहीं है, वह तो अचारित्र है। महाव्रत के परिणाम, विकल्प भी अचारित्र है परन्तु आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, तीर्थंकर सर्वज्ञ ने कहा, ऐसा भगवान आत्मा अन्तर के आनन्द के अवलम्बन से स्थिरता, शान्ति, आनन्द की जो दशा प्रगट हुई, वह निश्चयचारित्र है। उसके साथ यह परिग्रह का त्याग, यह विकल्प है कि वस्त्र छूटा है, नग्न हूँ—ऐसा जो विकल्पदशा, उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म। आत्मा का मार्ग कहो या वीतराग का कहो। वीतराग का मार्ग कोई अलग नहीं है।

भगवान आत्मा अत्यन्त वीतरागस्वरूप की मूर्ति आत्मा है। आहाहा! उसमें पंच महाव्रत के विकल्प और राग की गन्ध अन्दर में नहीं, ऐसी वह चीज़ है। ऐसी चीज़ का अवलम्बन लेकर, जिसने चारित्र अन्तर में (प्रगट हुआ है)। पहले तो सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, वह भी स्वरूप ध्रुवचैतन्य आनन्द का आश्रय करके सम्यग्दर्शन होता है। उस सम्यग्दर्शन में शुद्धपरिणति कम है। फिर स्वरूप की विशेष अन्तर रमणता प्रगट होने पर शुद्ध की परिणति उग्र है, उसे सच्चा चारित्र कहते हैं। ऐसे चारित्र की भूमिका में जब तक सर्वज्ञ और वीतराग न हो, उसे पंच महाव्रत का विकल्प जो राग है, आस्रव है, पुण्यास्रव है, ऐसा भाव वहाँ आता है। समझ में आया? आहाहा! अभी तो चारित्र किसे कहना, सम्यग्दर्शन किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और उसे धर्म हो जाए, (ऐसा नहीं हो

सकता)। आहाहा! क्या हो? अनन्त काल का अनजाना पन्थ, अन्तर के अनुभव और भान बिना वह प्रगट हो, ऐसा नहीं है।

उसे **पाँचवाँ व्रत कहा है।**

**टीका : यहाँ (इस गाथा में) पाँचवें व्रत का स्वरूप कहा जाता है।** देखो! पहली ही बात। **सकल परिग्रह के परित्यागस्वरूप...** भगवान आत्मा प्रभु। अन्दर कैसा है? ध्रुवस्वरूप नित्यानन्द आत्मा। **सकल परिग्रह के परित्यागस्वरूप...** परि उपसर्ग है न? समस्त प्रकार से त्यागस्वरूप। जिनके अन्तरस्वरूप में कोई विकल्प नहीं और अन्तर स्वरूप में एक समय की पर्याय की भी पकड़ नहीं। समझ में आया? एक समय की पर्याय में पकड़ हो तो वह परिग्रहबुद्धि है। यहाँ तो भगवान का मार्ग है, बापू! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिन्होंने केवलज्ञान में तीन काल-तीन लोक देखा। भगवान की वाणी इच्छा बिना निकली। उन्हें इच्छा नहीं होती। उस वाणी को आगम कहने में आता है। उस आगम में ऐसा स्वरूप है। आहाहा!

**सकल परिग्रह के परित्यागस्वरूप निज कारणपरमात्मा के स्वरूप में...** देखो! भाषा भी ऐसी है। **निज कारणपरमात्मा के स्वरूप में...** अपना। अनादि-अनन्त नित्य प्रभु, अपना निज कारणपरमात्मा, जिसमें से कार्य-धर्मदशा जिसके आश्रय से प्रगट हो, ऐसे निज कारणपरमात्मा का स्वरूप अपना... आहाहा! उसमें **अवस्थित...** मुनि उसमें अवस्थित हैं। आहाह! निज ध्रुव भगवान आत्मा नित्यानन्द अनादि-अनन्त अविनाशी जिसका भाव-स्वभाव, एक समय की पर्याय से रहित। पुण्य-पाप के विकल्प से, राग से तो रहित, परन्तु एक समय की प्रगट परिणमन की वर्तमान व्यक्त पर्याय / दशा... आहाहा! उससे भी रहित निज कारणपरमात्मा का स्वरूप, अपना स्वरूप, ध्रुवस्वरूप। उसमें अवस्थित। उसमें निश्चय से आनन्द में स्थिर हो गये हैं। आहाहा! ऐसे **परम संयमियों को...** उन्हें परम संयमी कहने में आता है। आहाहा!

अरे! कहाँ लोग मान बैठे? कहाँ वस्तु का स्वरूप है! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ आगम द्वारा ऐसा फरमाते हैं। भगवान! तेरा अन्तर स्वरूप तो जिसमें अनन्त-अनन्त सिद्धों की पर्याय प्रगट हो, सिद्ध की पर्याय एक, ऐसी अनन्त। ऐसी अनन्त पर्यायों का गुणरूप, ध्रुवरूप भगवान आत्मा, जिसे दृष्टि में लेने से, पूर्णानन्द के स्वभाव का आश्रय लेने से

जिसकी दशा में सम्यग्दर्शन और अतीन्द्रिय आनन्द का सम्यग्दर्शन होने पर स्वाद आता है, वह परम निज कारणपरमात्मा के अवलम्बन से होता है। किसी शरीर, वाणी, मन या परमेश्वर तीन लोक के नाथ हों, उनके अवलम्बन से भी वह दशा प्रगट नहीं होती। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव हों, उनका लक्ष्य करने जाए, तब तो राग उत्पन्न होता है, क्योंकि वे तो परद्रव्य हैं। परद्रव्य का आश्रय करने जाए तो शुभराग होता है; उसके आश्रय से धर्म की—सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र की पर्याय उनके आश्रय से उत्पन्न नहीं होती तथा अपना जो दया, दान, व्रतादि का विकल्प है, उसके आश्रय से भी यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं होते। तथा एक समय की प्रगट अवस्था ज्ञान के उघाड़ की विकासरूप है, उसके आश्रय से भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं होता। नियमसार है न? नियमसार, सच्चा मोक्ष का मार्ग।

यह तो निज कारणपरमात्मा, जिसकी खान में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता—ऐसे स्वभाव का भण्डार प्रभु आत्मा, निज प्रभु... आहाहा! उसमें जो अवस्थित है, ऐसे परम संयमियों को... उन्हें परम संयमी और साधु कहने में आता है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** ऐसे साधु होते हैं?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वीतरागमार्ग में ऐसे साधु होते हैं। अज्ञानमार्ग में सब चाहे जिस प्रकार माने। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक देखे - जाने हैं, ऐसी जिन्हें सर्वज्ञशक्ति व्यक्त प्रगट हो गयी और साथ में अनन्त आनन्द, अनन्त दर्शन और अनन्त वीर्य ऐसा परमात्मा को प्रगट हुआ। वे सब दशाएँ कहाँ से आयीं? क्या राग में से आयी? शरीर में से आयी? पर्याय एक समय की वर्तमान पर्याय में से आयी? कहाँ से आती है? भाई! अन्तर वस्तु भगवान आत्मा नित्यानन्द का नाथ आत्मा स्वयं, उसमें अवस्थित हो, तब उसमें से आती है। सूक्ष्म बात है, भाई! जन्म-मरण के अन्त की विधि कठिन है। वह तो कहेंगे। ज्ञानी पुरुष को वह कोई कठिन नहीं है, ऐसा कहेंगे। असत् पुरुषों को कठिन है। आहाहा! कहते हैं न? आगे कलश में आता है न? सत्पुरुष को कोई महा आश्चर्य की बात नहीं है। असत् पुरुषों को आश्चर्य की बात है। ८०वाँ कलश आयेगा। आहाहा!

पहला तो सम्यग्दर्शन ही उसे कहा जाता है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नव तत्त्व की श्रद्धा, वह सम्यग्दर्शन नहीं है। भगवान पूर्णानन्द प्रभु निज प्रभु शक्ति का सत्व, उसकी प्रतीति, उसका अनुभव होकर उसका ज्ञान होकर प्रतीति हो, वह अन्तर के आश्रय से होती है। समझ में आया? आओ, सामने आओ। पुस्तक दो पुस्तक। समझ में आया?

परम संयमियों को... आहाहा! जिनके आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द जो भरा हुआ है, उसमें से उनकी दशा में अतीन्द्रिय आनन्द उछल निकला है। जैसे समुद्र में मध्य में पानी भरा है, वह ज्वार के काल में किनारे आकर... ज्वार आता है न? हमारे गुजराती काठियावाड़ में भरती कहते हैं। ज्वार आता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा के ध्रुव मध्यबिन्दु में अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान और शान्ति पड़ी है। उसमें एकाग्र होने से उसकी वर्तमान पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का उछाला आता है, कहते हैं। आहाहा! और उसमें श्रद्धा करना कि यह अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति पूरा आत्मा है, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा!

तदुपरान्त विशेष शुद्धता के द्रव्य का विशेष आश्रय लेकर, विशेष अवलम्बन लेकर वस्तु में विशेष स्थिर हुआ है। अतीन्द्रिय आनन्द और शान्ति की वृद्धि हो गयी है, उसे संयमी और मुनि कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे **परम संयमियों को-अर्थात् परम जिनयोगीश्वरों को....** परम जिनयोगीश्वर। आहाहा! जिन्हें आत्मा अखण्डानन्द प्रभु... जिनस्वरूप ही ध्रुव आत्मा है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले, जिन प्रवचन का मर्म'। आहाहा! ऐसा भगवान जिन, वापस परमजिन (कहा है)। जिन्होंने राग को जीता है, मिथ्यात्व को तो जीता है। पश्चात् राग को जीता है और सम्यग्दर्शन शान्ति चारित्र की अन्तर में हुलास से आनन्द के हुलास से शान्ति का वेदन करते हैं, कहते हैं। आहाहा! ऐसे जिनयोगीश्वर। इतने विशेषण प्रयोग किये हैं। परम जिन योग और ईश्वर... आहाहा!

समकिती भी जिन है। समकिती योगी भी है, परन्तु अभी समकिती परम ईश्वर नहीं है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में चौथे गुणस्थान में भगवान ध्रुवस्वरूप प्रभु का एकाग्रपना (करके) मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी को जीता है और उतनी शान्ति तथा स्थिरता सम्यग्दर्शन की भूमिका में प्रगट होती है परन्तु यह तो परम जिनयोगीश्वर... वीतरागता के भाव से अस्थिरता को स्वरूप में एकाग्रता द्वारा ईश्वरपना प्रगट करके जीता है। आहाहा!

ऐसे मुनि को **सदैव निश्चयव्यवहारात्मक सुन्दर...** यह सुन्दर है, इसलिए व्यवहार से सुन्दर का आरोप दिया गया है। आहाहा! सदा ही निश्चय। अतीन्द्रिय में आत्मा के आनन्द का ज्वार आया है। ऐसी जो अतीन्द्रिय आनन्द के स्वरूप की रमणता, उसे निश्चय चारित्र कहते हैं, सच्चा चारित्र (कहते हैं) और उसकी भूमिका में पंच महाव्रत का विकल्प उठता है, वह राग है। उसे व्यवहारचारित्र कहते हैं। चारित्र नहीं है, उसे कहना, उसका नाम व्यवहार है। समझ में आया? आहाहा!

**मुमुक्षु :** दो होकर एक ही चारित्र कहते हैं।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** दो होकर चारित्रभर। चारित्रभर की व्याख्या दो होकर की है। निश्चय और व्यवहार। यह व्यवहार का अधिकार है न? समझ में आया? आहाहा! यह मार्ग सुनना भी जगत को कठिन पड़ता है। समझना और करना तो कहीं रह गया। आहाहा! परन्तु ऐसा स्वरूप वीतराग ने कहा है और यही वस्तु की स्थिति है कि आत्मा का, ध्रुव का अवलम्बन लेकर जिसने सम्यग्दर्शन-आत्मा का अनुभव प्रगट किया है, तदुपरान्त जिसने द्रव्य का, शुद्ध का बहुत अवलम्बन लेकर, आश्रय लेकर जिसने आनन्द और शान्ति की विशेष स्थिरता प्रगट की है, उसे निश्चय और व्यवहारचारित्र होता है, ऐसा कहते हैं। उसे निश्चय / सच्चा स्वरूप में रमणता आनन्द, वह सच्चा चारित्र और उसे पंच महाव्रत का विकल्प उठे, वह खोटा चारित्र, उसे व्यवहारचारित्र कहने में आता है। आहाहा! गजब बात है। यहाँ तो अभी पाँच महाव्रत का ठिकाना नहीं होता, समकित बिना के, हों! मिथ्यादृष्टि। अरे! भगवान! कहाँ भूला है और कहाँ गया है? आहाहा!

अरे! जन्म-मरण का चक्र। चौरासी के अवतार के दुःख, उसका अन्त तो स्वभाव का आश्रय ले तो होता है, ऐसा है। इसके अतिरिक्त किसी क्रियाकाण्ड से... समझ में आया? चार गति के दुःख चाहे तो स्वर्ग में हो, तो भी दुःखी है। जहाँ आत्मा के आनन्द की खबर नहीं और अकेले देव के सुख को भोगने का विकल्प, वह भी आकुलता है। अंगारों की अग्नि सुलगती है। आहाहा! ये सेठिया पैसेवाले, धूलवाले कहलाते हैं। धूल के सेठिया कहलाये न? ये धूल के। पाँच-पचास लाख, करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़। ये बेचारे अंगारों में सुलगते हैं। ये राग के अंगारों में सुलग उठे हैं। सुखी नहीं हैं। आहाहा! सुख और आनन्द तो अन्तर भगवान आत्मा के घर में पड़ा है। उसके घर में जाकर एकाग्र हुए बिना आनन्द नहीं आता। आहाहा!

कहते हैं कि अहो! ऐसा निश्चयव्यवहार... सदा ही, कहा है न? सदा ही निश्चय है और साथ में विकल्प भी सदा है, ऐसा लिया। यह व्यवहार अधिकार है, इसलिए साथ में लिया है। **सुन्दर चारित्रभर वहन करनेवालों को,...** आहाहा! आनन्दस्वरूप का, अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र स्वाद है, वह सच्चा निश्चयचारित्र है। उसमें विकल्प उठा, वह व्यवहारचारित्र है। दोनों को यहाँ सुन्दर चारित्रभर कहा है। यह निश्चय सुन्दर है, वह व्यवहार सुन्दर है परन्तु जिसे यह निश्चय हो उसे। आत्मा का सम्यग्दर्शन भी नहीं और चारित्र की रमणता का आनन्द नहीं, ऐसे जीव को तो पंच महाव्रत के विकल्प व्यवहार से भी कहे नहीं जाते। व्यवहार से भी उसे चारित्र नहीं है। आहाहा!

**वहन करनेवालों को,...** वापिस देखा? इतना पुरुषार्थ है न? निश्चय में पुरुषार्थ है और व्यवहार में इतना... उसे वहन करनेवाला कहा। शुद्धपरिणति को वहन करता है, और शुभभाव को भी वहाँ (वहन करता है)। इतना प्रयत्न है न? अशुभ नहीं होता उतना। **बाह्य-अभ्यन्तर चौबीस प्रकार के परिग्रह का परित्याग ही...** ऐसे मुनि को बाह्य परिग्रह वस्त्र-पात्र, स्त्री, कुटुम्ब, सर्व का छूट गया है। अभ्यन्तर तीन कषाय का भाव छूट गया है। ऐसे **परम्परा से पञ्चम गति के हेतुभूत—ऐसा पाँचवाँ व्रत है।** मूल तो पाँचवें व्रत को परम्परा हेतुभूत कहते हैं क्योंकि विकल्प है। निश्चय से तो शुद्धपरिणति ही मोक्ष का कारण है, परन्तु उसके साथ ऐसा विकल्प है, उसे परम्परा अर्थात् अब बाद में... व्यवहार से, ऐसा इसका अर्थ। इसका त्याग होकर होगा। साक्षात् तो शुद्ध परिणति है, वह मोक्ष का कारण है। आहाहा! क्या कहते हैं? बात समझना कठिन।

भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु है। अतीन्द्रिय आनन्द की खान है। उस खान में से जिसने अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर में एकाग्र होकर निकाला, उसे स्वावलम्बी समकिती, स्वावलम्बी ज्ञानी और स्वावलम्बी चारित्रवन्त कहने में आता है। आहाहा! उसे पंच महाव्रत अथवा अट्ठाईस मूलगुण मुनियों के अट्ठाईस विकल्प हैं, वह शुभराग है, वह व्यवहार है। पाँचवाँ व्रत।

**परम्परा से पञ्चम गति के...** हेतु निमित्त है। नीचे इसका स्पष्टीकरण करना पड़ा। वास्तव में तो इतना ही है। कि वह है। अभी तो साक्षात् तो शुद्धपरिणति है परन्तु शुभ को छोड़ेगा, इसलिए परम्परा अर्थात् व्यवहार कहा। साक्षात्, वह निश्चय; परम्परा, वह व्यवहार। साक्षात् तो आत्मा शुद्ध अतीन्द्रिय आनन्द की रमणता में रमता है, वह मुक्ति का

कारण है। उसके राग को परम्परा, अभी नहीं, साक्षात् नहीं इसलिए परम्परा अर्थात् व्यवहार। व्यवहार का अर्थ यह हुआ। अरे! इसमें आग्रह किसका? भाई! तेरे घर में जाने की बात में वाद-विवाद क्या? उसमें वाद-विवाद नहीं। आहाहा! जन्म-मरण का अन्त लाना है, बापू! चौरासी के अवतार में भटककर दुःखी है। कहीं सुख नहीं है। यह पुण्यभाव करता है न? वह दुःख है। आहाहा! वास्तव में यह पंच महाव्रत का विकल्प भी दुःख है। परन्तु आनन्दस्वरूप ऐसे भगवान का अवलम्बन लेकर जिसने अतीन्द्रिय आनन्द की शान्ति, चारित्र प्रगट किया है, इसलिए वह विकल्प है दुःख, परन्तु साक्षात् मोक्ष का सुखरूप कारण तो शुद्धपरिणति। उस दुःख का अभाव करेगा, इसलिए उसे परम्परा से मुक्ति का कारण कहा है। व्यवहार से ऐसा है, बात ऐसी है। आहाहा!

नीचे नोट में (क्रमांक ३) हमारे पण्डितजी ने स्पष्टीकरण किया है। **शुभोपयोगरूप व्यवहारव्रत,...** यह स्पष्टीकरण किया है। कौन पण्डित? हमारे पण्डित हैं। बड़े पण्डित हैं। बहुत शान्त हैं। संस्कृत, व्याकरण सबमें पूर्ण हैं। उन्होंने नीचे स्पष्टीकरण किया है। **शुभोपयोगरूप व्यवहारव्रत,...** क्या कहते हैं? स्वरूप की-आत्मा की शुद्धपरिणति, ऐसी भूमिका में जो शुभराग, महाव्रत का उपयोग होता है, ऐसा **शुभोपयोगरूप व्यवहारव्रत, शुद्धोपयोग का हेतु है...** वह शुद्धोपयोग अर्थात् अन्दर वीतरागीदशा, उसमें शुभराग निमित्त है। व्यवहार से हेतु कहा है। वास्तव में तो व्यवहारव्रत है, वह तो राग है। शुद्ध उपयोग है, वह तो वीतरागता है। आहाहा! गजब बात है! इस वीतरागता का हेतु राग, यह तो उपचार से कथन है। आहाहा! महाव्रत है, वह विकल्प है, राग है, आस्रव है। उसे शुद्ध उपयोग जो आत्मा का, आत्मा के आश्रय से वीतरागता हो, उसका उसे हेतु कहना, वह तो व्यवहार से है। समझ में आया?

**शुद्धोपयोग मोक्ष का हेतु है...** और आत्मा में महाव्रत का विकल्प शुभ से रहित अन्तर के आनन्दस्वरूप का उपयोग जो वीतरागी परिणाम / शुद्धोपयोग, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है। **ऐसा मानकर यहाँ उपचार से व्यवहारव्रत को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा है।** उपचार से कहो या व्यवहार से। व्यवहार से व्यवहारव्रत को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा गया है। समझ में आया? शास्त्र के अर्थ करने में भी झगड़े। **वास्तव में तो शुभोपयोगी मुनि को...** छठवें गुणस्थान में सच्चे मुनि-सन्त को शुभोपयोग पंच महाव्रत का राग जब

वर्तता है। **मुनियोग्य शुद्धपरिणति ही...** उन्हें तो मुनि के योग्य... समकिती के योग्य शुद्धपरिणति जघन्य थोड़ी है। पंचम गुणस्थान में शुद्धपरिणति उससे विशेष है। छठे गुणस्थान में उससे विशेष है। वस्तु भगवान पूर्णानन्द प्रभु का चारित्रवन्त ने उग्र आश्रय लिया है, इसलिए उसकी शुद्धपरिणति विशेष उग्र है। उसे **( शुद्धात्मद्रव्य का अवलम्बन करती है, )...** कौन? शुद्धपरिणति। शुद्धपरिणति अर्थात्? अशुभराग, वह पापराग; शुभराग, वह पुण्यराग, दोनों से रहित स्वभाव का आश्रय होकर जो शुद्ध वीतरागी परिणति प्रगट होती है, उसे यहाँ शुद्धपरिणति, शुद्धपर्याय कहने में आता है। आहाहा! शान्तिभाई! लो, ऐसा है यह।

**मुमुक्षु :** हवा में उड़ने की बात है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** बापू! मार्ग तो तेरा अन्तर में है, बाहर में है नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मुनि के योग्य जो शुद्धदशा—इसका अर्थ? समकिती के योग्य जो शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति जो प्रगट हुई है, वह समकिती के योग्य है। जिसे सच्चा श्रावक कहते हैं। यह वाड़ा के हैं, उनकी बात यह नहीं है।

**मुमुक्षु :** वाड़ा में हैं, वे तो वाड़ा में ही रहे।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वाड़ा में तो बकरे होते हैं। आहाहा!

यह तो आत्मा अन्तर भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने, त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने इन्द्रों और गणधर के समक्ष दिव्यध्वनि द्वारा भगवान ने जो आत्मा वर्णन किया, वह आत्मा अन्दर में पूर्ण शुद्ध और पूर्ण स्वभाव का भण्डार है। समकिती को उसके योग्य उसकी शुद्धदशा होती है। पाँचवें (गुणस्थानवाले) को उसके योग्य उसकी शुद्धदशा विशेष होती है। मुनि को उनके योग्य शुद्धदशा विशेष होती है, क्योंकि उन्होंने द्रव्य का विशेष आश्रय और अवलम्बन लिया है। जितना विशेष अवलम्बन, उतनी उग्र और ऊँची दशा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

**विशेष शुद्धिरूप शुद्धोपयोग का हेतु होती है...** लो, क्या कहते हैं? छठवें गुणस्थान में जो वस्तु / आत्मा के अवलम्बन से प्रगट हुई शुद्धपरिणति, वह सातवें गुणस्थान का जो शुद्धोपयोग है, उसका वह शुद्धपरिणति कारण होती है।

**मुमुक्षु :** आप तो उससे भी इनकार करते हो।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो अभी व्यवहार सिद्ध करना है न ? पर्याय का दाता आत्मा नहीं है, यह बात फिर एक ओर रही। यहाँ तो... अरे ! भगवान का मार्ग, बापू ! तीन काल-तीन लोक में परमेश्वर ने कहा, उसके अतिरिक्त कहीं है नहीं, किसी मार्ग में यह मार्ग है नहीं, परन्तु इसके मार्ग की पद्धति जानना, अनन्त काल में इसने जानी नहीं। अनन्त काल में इसने दरकार ही नहीं की। ऐसे का ऐसा बाहर में ही बाहर में बाह्य दृष्टि से धर्म मानकर बहिरात्मबुद्धि से, उसमें (समय) गँवाकर अनन्त संसार इसने बिताया है, भाई ! आहाहा !

कहते हैं कि जो सच्चे मुनि आत्मदर्शी, आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी शुद्धपरिणतिवाले, उन्हें जो महाव्रत का शुभपरिणाम वर्तत है, उसे मोक्ष का हेतु कहा, उसका अर्थ यह है कि उन्हें जो शुद्धपरिणति वर्तती है, वह शुद्धोपयोग का कारण है और शुद्धोपयोग मोक्ष का कारण है। ऐसा लेना है न यहाँ ? आहाहा ! **शुद्धोपयोग का हेतु होती है और वह शुद्धोपयोग, मोक्ष का हेतु होता है।** ऐसा लिया। यह जरा शान्ति से समझने जैसी बात है। यह कहीं वार्ता-कथा नहीं है। एक राजा था, एक रानी थी। मार गप्प और वह सुनकर प्रसन्न हो। ओहोहो ! क्या महाराज ने आज बात की ! कल रावण को राम मारेंगे, हों ! अब।

हमारे बोटाद में ऐसा था। बोटाद में (संवत्) १९७० में दीक्षा ली न ? १९७० में दीक्षा ली। ५८ वर्ष हुए। तब वे 'रतनसी भावसार' थे। भाई पहिचानते हैं। रतनसी, पहले वहाँ थे न। वे होंकार देते थे। १९७० के आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा की बात है। दीक्षा हुई, कण्ठ अच्छा था, बहुत मीठा। फिर वहाँ ढाल... क्या कहलाता है ? ढाल-ढाल। कोई शब्द है, भूल गये। वह... अलग और ढाल। ...अलग वे नीचे पढ़ते। इसलिए रतनसीभाई ऊपर आये। मुझे कहा-महाराज ! आप आओ न। अरे ! रतनसीभाई ! यह तो मैं तो उसे विकथा मानता हूँ। पूर्णिमा से शुरु होवे वह भाद्र शुक्ल पंचम तक, बस इतना। मात्र ढाल और वह... ढाल पढ़े उसमें श्रीकृष्ण की बात, रामरास में राम की बात। दोनों अलग बात है। इसलिए हमारे नीचे मूलचन्दजी थे, माणिकचन्दजी थे। १९७० का पहला चातुर्मास था न ? माणिकचन्दजी थे और कानजी भावसार थे। भावसार नहीं थे परन्तु वह दीक्षा... वे दो व्यक्ति थे और चार हम थे। फिर नीचे हमारे मूलचन्दजी... रतनसी भावसार आये, हों ! मैं तो ऊपर बैठता था। ....नीचे बैठे। जहाँ जरा कहा... ऐई ! रतनसीभाई ! यह तो सब विकथाएँ हैं। तब कहा, तुम्हारे गुरु पढ़ते हैं न ? तो गुरु पढ़ते हैं तो भी विकथा है। मेरे सामने

तो बहुत बोल नहीं सके। यह हमारे गुरु मूलचन्दजी पढ़ते, हीराजी महाराज पहले पढ़ते, फिर बन्द कर दिया। फिर मूलचन्दजी पढ़ते। चाहे जो पढ़े। यह लोकरंजन और लोगों को इकट्ठे करने की कथा है। उसमें धर्म क्या होगा और कैसे होगा, उसकी बात उसमें कहाँ है? आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा, १९७० के वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए? १९७० में दीक्षा ली थी। ५७ वर्ष। नहीं, यह धर्म की बात छोड़कर ऐसी सब लोगों को रंजन करने की... ? अब यह तो बात कहाँ थी? आहाहा!

कहते हैं, यहाँ जो पाँचवें महाव्रत के राग को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा, उसका कारण ऐसा है कि मुनि को मुनियोग्य छठवें गुणस्थान में जो शुद्धपरिणति तीन कषाय के अभाव की वीतरागदशा प्रगट हुई होती है, वह शुद्धपरिणति बाद के सातवें गुणस्थान के शुद्धोपयोग को शुद्धपरिणति कारण कहलाती है। वह कारण इसका वास्तविक है और वह शुद्धोपयोग मोक्ष का कारण है, तथापि **इस प्रकार इस शुद्ध परिणति में रहे हुए मोक्ष के परम्पराहेतुपने का आरोप...** क्या कहते हैं? वह शुद्धपरिणति, छठे (गुणस्थान) में शुद्ध वीतरागदशा है, वह शुद्धोपयोग का कारण है। सातवें का शुद्धोपयोग मुनि को, और वह शुद्धोपयोग केवल मोक्ष का कारण है।

इस प्रकार यहाँ **शुद्ध परिणति में रहे हुए मोक्ष के परम्पराहेतुपने का आरोप...** शुद्धपरिणति परम्परा से मोक्ष का कारण है, भाई! साक्षात् मोक्ष का कारण शुद्धोपयोग है। यहाँ है, तदनुसार बात को सिद्ध किया है। समझ में आया? जो बात जैसे हो, वैसे सिद्ध होगी न? कहो, समझ में आया? आत्मा में शुद्धोपयोग, पुण्य और पाप के अशुद्धोपयोग से रहित आत्मा के आनन्द का शुद्धोपयोग, निर्मलानन्द वीतराग उपयोग, वह मुक्ति का कारण है। अब उस शुद्धोपयोग का कारण... वह शुद्धोपयोग सातवें गुणस्थान में होता है। आंशिक नीचे होता है, उसकी यहाँ बात नहीं लेना है। उस शुद्धोपयोग का कारण छठवीं भूमिका में जिसे शुद्धपरिणति जो है, वीतरागी दशा (है), वह शुद्धोपयोग का हेतु है और शुद्धपरिणति परम्परा से मोक्ष का कारण है। सीधा (कारण) तो शुद्धोपयोग है। समझ में आया? यह शुद्धपरिणति परम्परा से मोक्ष के कारण का आरोप शुभ उपयोग में व्यवहार से दिया है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** जरा लम्बा है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** लम्बा है। है तो लम्बा। बात सच्ची है परन्तु इसे समझना पड़ेगा न? आहाहा! ऐसे काल में नहीं समझे, बापू! यह मनुष्य देह चला जाएगा, भाई! यह तो हड्डियाँ हैं, मिट्टी है, इसकी अवधि से रहेगी, अवधि पूरी होने पर चला जाएगा। तुझे करना हो, वह यदि नहीं किया, (तो) यह लट का अवतार और मनुष्य के अवतार में अन्तर क्या? आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि यहाँ परम्परा से पंचम गति का हेतु पाँचवें महाव्रत के विकल्प को-शुभराग को कहा, उसका यह आश्रय समझना कि आत्मा में वस्तु के आश्रय से मुनि के योग्य जो शुद्धदशा, वीतरागी परिणति-पर्याय प्रगट हुई है, वह शुद्धोपयोग बाद का उसका वह कारण है और शुद्धोपयोग मोक्ष का कारण है तो वास्तव में तो शुद्धपरिणति ही मोक्ष का परम्परा कारण है परन्तु... यह निश्चय हुआ। निश्चय परम्परा कारण। समझ में आया? वह राग व्यवहार है, इसका-शुद्धपरिणति का आरोप वहाँ डाला है। निश्चय से परम्परा हेतु यह है। इसका हेतु यहाँ डाला कि यह परम्परा मोक्ष का कारण है, यह व्यवहार से कहने में आया है। कहो, समझ में आया? गजब बातें, भाई! यह, ऐसा समझ करना, श्रद्धा करना... यह कोई... आहाहा! वह तो चलो दया पालो, व्रत करो और करो उपवास तथा दो-पाँच लाख खर्च करके यात्रा कर डालो, धर्म हो जाएगा। धूल में भी धर्म नहीं, सुन न! लाख यात्रा निकाल तो भी वहाँ कहाँ धर्म था? वह तो शुभराग है। महाव्रत और तप करने में राग मन्द करे तो शुभराग है। वहाँ धर्म-बर्म नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

एक व्यक्ति का पत्र आया है। कल किसी का पत्र आया है, यह तुम्हारे क्या कहलाता है परबिंडियो? अन्तर्देशी। महाराज! आप ये सब मन्दिर बनाते हो, इसकी अपेक्षा ढूँढिया को आत्मा की ओर झुकाओ न! प्रतिमा वह तो शुभराग है। ऐसा बेचारे बहुत लिखते हैं। कौन कहता है? यहाँ मन्दिर का किसी ने कहा नहीं। यह तो अपने आप लोग करते हैं। हम कहते हैं कि इसमें शुभभाव है, पुण्य है; धर्म नहीं।

**मुमुक्षु :** लोग क्यों करते हैं? आप कहते हो कि आपने उपदेश किया नहीं और लोग बनाते हैं। अब उसका क्या करना?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उपदेश किया नहीं, ऐसा नहीं है। यह तो कहा नहीं कि तू यह करना, ऐसा। उपदेश में तो सब बात आती है। ऐई! और वह भी जहाँ नहीं, वहाँ लोग बनाते

हैं। जहाँ आगे साधन नहीं है, वहाँ बनाते हैं। समझ में आया? एक विशेष आँख में आवे, ऐसा जरा यह फतेपुर का होगा, ऐसा लगता है। कहा हमने तब भी हुआ था। जो होता है, वह तो होगा, क्योंकि गाँव छोटा न... जरा लोगों को लगता है। परन्तु पैंतीस घर और वे समवसरण बनाते हैं। हमने तो कभी कुछ कहा नहीं। मार्ग ऐसा है और उसमें ऐसा होता है, बस इतनी बात है और अभी तो देखो न, यह जयपुर में तो अकेला शिक्षण का कार्य। अकेला शिक्षण, भाई! बापू! शिक्षण में दो-ढाई लाख रुपये खर्च किये। बीस दिन, दो हजार लोग बाहर से आये थे। दो घण्टे व्याख्यान और दो घण्टे शिक्षा। तत्त्व का उपदेश। दो सौ तो अध्यापक आये थे। पाठशाला में पढ़ानेवाले। बीस दिन हुए न वहाँ? ज्येष्ठ शुक्ल ग्यारह। अन्दर समझाने के लिए ऐसा शुभभाव होता है। है तो शुभभाव, कहा, भाई!

जहाँ जरूरत नहीं है, वहाँ मन्दिर बनाना; जरूरत नहीं है, वहाँ मानस्तम्भ बनाना, पैसा डालना, बापू! यह कहीं ठीक नहीं कहलाता। यह तो अपने इकट्ठा काम करते हैं। यह लोग जहाँ जरूरत है, वहाँ डालते हैं और यह वह क्या कहलाता है? आहारजी नहीं? पपोरा। कितने मन्दिर। दिगम्बर घर एक भी नहीं। तीन तो मानस्तम्भ हैं, चौथा बनाते हैं। लोगों को पैसे हुए हों, लोगों को ऐसा लगता है कि ओहो! अमुक सेठ का मन्दिर। मान है। मान के लिए (बनाते हैं)। जहाँ देवदर्शनादि न हो, वहाँ होता है परन्तु यह तो पचास-पचास मन्दिर और चार-चार बड़े ढ़ेर। आहाहा! दुनिया रिवाज में चढ़ी, वह कहाँ चढ़ी?

यहाँ तो कहते हैं, मुनि जैसे सच्चे सन्त को भी जो महाव्रत का शुभोपयोग आता है, वह भी राग है, वह भी बन्ध का कारण है, परन्तु आये बिना नहीं रहता। स्वरूप के अनुभव की दशा में चारित्र निर्मल वीतरागदशा प्रगट हुई हो, तथापि होता है। उस शुभोपयोग को मोक्ष का कारण कहा, उसका हेतु यह कि मुनियोग्य सच्ची शुद्ध वीतराग दशा प्रगटी होती है, वह शुद्धोपयोग का हेतु और शुद्धोपयोग मोक्ष का कारण है। वह निश्चय वास्तविक कारण है। यह व्यवहार कारण है। कहो, समझ में आया? स्व आश्रय शुद्धपरिणति, स्व आश्रय शुद्धोपयोग, स्व आश्रय मुक्ति, ऐसा। इस अपेक्षा से निश्चय कहा और यह तो पर के आश्रय से राग। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, बापू! इसमें वाद-विवाद को कोई अवसर भी नहीं है। ऐसी चीज़ है। भगवान ने कुछ की नहीं है। भगवान ने तो अपना सर्वज्ञपना प्रगट किया, तब वाणी द्वारा आया कि मार्ग यह है, बापू! भगवान, वे किसी के कर्ता नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? लो।

**इस प्रकार इस शुद्ध परिणति में रहे हुए मोक्ष के परम्पराहेतुपने का आरोप– उसके साथ रहनेवाले–शुभोपयोग में करके, व्यवहारव्रत को मोक्ष का परम्परा हेतु कहा जाता है। जहाँ शुद्ध परिणति ही न हो....** परन्तु जहाँ अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना न हो, वह पुण्य और विकल्प से धर्म माने, महाव्रत के परिणाम को चारित्र माने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? बात ऐसी है, बापू! वीतराग के घर का सत्य तो ऐसा है। आहाहा! इन्द्र, सौधर्म देवलोक के इन्द्र, ईशान इन्द्र जो स्वीकार करते हैं, बापू! वह कहीं कोई दो–चार, पच्चीस–पचास लोगों की कल्पना की बात नहीं है। वह तो अनन्त तीर्थंकरों, अनन्त इन्द्रों ने स्वीकार किया, अनन्त गणधरों ने अनुभव किया, अनन्त तीर्थंकरों ने यही कहा है। समझ में आया?

जहाँ शुद्ध श्रद्धा–ज्ञान और स्वद्रव्य का भान ही नहीं है, **शुद्ध परिणति ही न हो, वहाँ वर्तते हुए शुभोपयोग में मोक्ष के परम्पराहेतुपने का आरोप भी नहीं किया जा सकता,...** बराबर है? **क्योंकि जहाँ मोक्ष का यथार्थ परम्पराहेतु...** वह शुद्धपरिणति। शुद्धपरिणति यथार्थ परम्पराहेतु है। वह तो है नहीं। **जहाँ मोक्ष का यथार्थ परम्पराहेतु प्रगट ही नहीं हुआ है – विद्यमान ही नहीं है, वहाँ शुभोपयोग में आरोप किसका किया जाए?** कहो, समझ में आया? जरा लम्बी बात है, परन्तु अब इसे समझना तो पड़ेगा या नहीं? आहाहा!

**मुमुक्षु :** स्पष्ट है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** स्पष्ट हुआ? यह स्पष्ट ही है। आहाहा!

सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा सीमन्धर प्रभु महाविदेह में विराजते हैं। यही बात प्रभु कहते हैं। साक्षात् विराजते हैं। तीर्थंकर, केवली विद्यमान गणधर, इन्द्र जाते हैं। वही बात यह है। आहाहा! समझ में आया?

**इसी प्रकार ( श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत ) श्री समयसार में ( २०८ वीं गाथा द्वारा ) कहा है कि—** लो, आधार देते हैं। इस ओर है न?

**मज्झं परिग्गहो जदि तदो अहमजीवदं तु गच्छेज्ज।**
**णादेव अहं जम्हा तम्हा ण परिग्गहो मज्झ।।**

धर्मात्मा, मुनि ऐसा विचारते हैं कि **यदि परद्रव्य–परिग्रह मेरा हो...** यह विकल्प से

लेकर। यहाँ फिर पर्याय परद्रव्य, ऐसा नहीं, वह रखो एक ओर। शुभराग महाव्रत का विकल्प है, वह भी अचेतन है। राग अचेतन है, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। आहाहा! राग है न? विकल्प है, वह अचेतन है। अचेतन अर्थात् उसमें चैतन्य ज्ञान के आनन्द का अंश नहीं है। चैतन्य के किरण का अंश नहीं है। तो कहते हैं कि परद्रव्य यदि मेरा होवे, अचेतन राग मेरा होवे **तो मैं अजीवत्व को प्राप्त होऊँ।** आहाहा! भगवान आत्मा तो ज्ञानानन्द की मूर्ति प्रभु है। सचेत, सचेत। अकेला ज्ञान-आनन्द का चेतन का पिण्ड है। उस चीज़ में इस राग का, वस्त्रादि का तो एक ओर रखो, महाव्रत का विकल्प, वह वास्तव में अचेतन है। राग है, इसलिए (अचेतन है) क्योंकि राग स्वयं राग को नहीं जानता, राग दूसरे के द्वारा जाना जाता है; इसलिए वह राग अचेतन है। उस राग को मेरा मानूँ तो मैं अजीव हो जाऊँ, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

**यदि परद्रव्य-परिग्रह मेरा हो तो मैं अजीवत्व को प्राप्त होऊँ। मैं तो ज्ञाता ही हूँ;...** वह अचेतन विकल्प मेरा नहीं है। आहाहा! यह तो सम्यग्दर्शन हुआ, तब से भान है, परन्तु यह तो चारित्रवन्त कहते हैं। यह चारित्र की व्याख्या है न? निर्जरा की गाथा है न यह? समयसार की निर्जरा की गाथा है। **मैं तो ज्ञाता ही हूँ; इसलिए (परद्रव्यरूप) परिग्रह मेरा नहीं है।** यह विकल्पमात्र दया, दान, व्रत का राग वह मेरी वस्तु नहीं है। वह मेरी होवे तो मैं अचेतन हो जाऊँ। आहाहा! शरीर-बरीर तो कहीं रह गया। यह तो मिट्टी-धूल है। अजीवरूप से रही हुई यह तो मिट्टी-धूल है, पुद्गल है। यह मेरा—ऐसा माने, तब तो जड़ है, कहते हैं। परन्तु राग के भाग को भी मेरा मानूँ तो, मैं अजीव हो जाऊँ, जीवपने न रहूँ।

**मैं तो ज्ञाता ही हूँ;...** जानने-देखनेवाली मेरी चीज़ है। मुझमें ये रागादि कोई चीज़ है नहीं। ऐसे आत्मा को अन्दर में अनुभव करना चाहिए, स्थिरता करनी चाहिए। इसका नाम मुक्ति का मार्ग है। दूसरा कोई मार्ग है नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)